ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-4* Issue-12* March- 2020
Anthology : The Research

'कार्य–कारण सिद्धान्त' के सन्दर्भ में भारतीय व पाश्चात्य दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन

सुशीला देवी
प्रवक्ता,
एन0 एस0 कॉलिज ऑफ एजुकेशन सोनीपत, भारत

सुमन
प्रवक्ता,
नारायना कालिज ऑफ एजुकेशन रोहतक, भारत

सारांश

हम जानते हैं कि दर्शन का अन्तिम उद्देश्य विभिन्न शाश्वत सत्यों को जानना होता है, परन्तु इन शाश्वत सत्यों की खोज किसी न किसी देश, विशिष्ट देशकाल एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में होता है। इसी कारण से भिन्न–भिन्न देशकाल में विकसित होने वाली दार्शनिक विचारधाराओं के स्वरूप में कुछ सीमा तक भिन्नता एवं विशिष्टता देखी जाती है। वास्तव में किसी भी विकसित होने वाली दार्शनिक विचाराधारा पर सम्बन्धित परिस्थितियों, संस्कृति आदि तत्वों की महत्वपूर्ण छाप अवश्य पड़ती है। इसी भिन्नता के कारण हम शाश्वत सत्यों से सम्बन्धित दार्शनिक विचारधाराओं को यूनानी, भारतीय, चीनी, पाश्चात्य दर्शन आदि नामों से जानते हैं।

प्रस्तावना

भारतीय दर्शन व्यावहारिक दर्शन है। इसकी उत्पत्ति मानव जीवन की कुछ शाश्वत समस्याओं के समाधान के लिए हुई है। प्रो0 हिरियन्ना के शब्दों में – ''पाश्चात्य दर्शन की भांति भारतीय दर्शन का आरम्भ आश्चर्य एवं उत्सुकता से न होकर जीवन की नैतिक एवं भौतिक बुराईयों के शमन से निमित हुआ था। दार्शनिक प्रयासों का मूल उद्देश्य या जीवन के दुखों का उपचार ढूँढ़ना और तात्विक प्रश्नों का प्रादुर्भाव इसी सिलसिले में हुआ।'' इस प्रकार कहा जा सकता है कि इसकी उत्पत्ति का आधार 'आध्यात्मिक असन्तोष' है। भारतीय दर्शन का आधार बहुत प्राचीन है। किन्तु अनेक पाश्चात्य दर्शनों द्वारा इसकी स्थिति पर लगाये गये आक्षेपों को भी नकारा नहीं जा सकता है। लेकिन पाश्चात्य दार्शनिकों द्वारा दी गयी नवीन विचारधाराओं का आधार भी यदि गहनता से देखा जाए तो उनके द्वारा आक्षेपित यही भारतीय दर्शन है। पाश्चात्य दर्शन द्वारा 'कार्य–कारण सिद्धान्त' के विषय में अरस्तु, मिल व ह्यूम के विचार इनके जन्म से भी वर्षों पूर्व निर्मित भारतीय सांख्य दर्शन के सत्कार्यवाद से प्राप्त होते हैं। अन्तर केवल परिस्थिति व देशकाल का है। इनके तर्क–वितर्क के पक्षों का अध्ययन किया जाए तो हमें इसी की सिद्धता तथा भारतीय और पाश्चात्य दर्शन की समरूपता का ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

1. कार्य–कारण सिद्धान्त

सर्वप्रथम कार्य–कारण सिद्धान्त की विवेचना आवश्यक है। दर्शन की प्रमुख शाखाओं में एक शाखा तत्व–मीमांसा है। तत्व–मीमांसा के अन्तर्गत कार्य–कारण सिद्धान्त की विवेचना की जाती है। कार्य–कारण सिद्धान्त के अन्तर्गत विचार किया जाता है कि किसी कार्य की उत्पत्ति से पूर्व उसके कारण की क्या स्थिति होती है अर्थात कार्य की उत्पत्ति से पूर्व सम्बद्ध कारण में कार्य विद्यमान होता है या नहीं? इसके साथ ही साथ कार्य–कारण सिद्धान्त के ही अन्तर्गत उत्पत्ति एवं विनाश की भी व्याख्या की जाती है।

भारतीय दार्शनिक आधारों में कार्य–कारण सिद्धान्त (सांख्य दर्शन के रूप में)

भारतीय दार्शनिक समस्त आधार आस्तिक एवं नास्तिक दर्शनों में विभक्त किया गया है। इसमें आस्तिक सांख्य दर्शन के आधार पर अन्य दर्शनों की श्रेणी में उच्च स्थान प्राप्त है। सांख्य दर्शन एक अति प्राचीन भारतीय दर्शन है। महर्षि कपिल को सांख्य दर्शन का आदि प्रवर्तक माना जाता है। यह भी माना जाता है कि सांख्य दर्शन के आदि ग्रन्थ **''सांख्य सूत्र''** की रचना भी महर्षि कपिल ने ही की थी। महर्षि कपिल के दो शिष्यों का भी नाम उल्लेखनीय है– **आसुरि** और **पंचशिखाचार्य**। इन दोनों

ने भी सांख्य दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना की किन्तु ये ग्रन्थ अब उपलब्ध नहीं हैं। इसके उपरान्त दो शताब्दी ईसा पूर्व एक अति सांख्य
विद्वान **'ईश्वर कृष्ण'** का प्रादुर्भाव जिन्होंने सांख्य दर्शन का प्रतिपादन करने के लिए 'सांख्य–कारिका' नामक ग्रन्थ की रचना की। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य ग्रन्थ भी उल्लेखनीय हैं, जैसे – **गोडपाद** का **'सांख्य–कारिका–भाष्य'**, **वाचस्पति** की **'कीतंर्क–कौमदी'**, **विज्ञानभिक्षु** का **'सांख्यसार'** व तथा **'सांख्य–प्रवर्चन–भाष्य'**।

सांख्य सत्कार्यवाद :

सांख्य दर्शन में कार्य–कारण सिद्धान्त को सत्कार्यवाद कहा जाता है। सांख्य के सत्कार्यवाद के अनुसार किसी भी कार्य की उत्पत्ति से पूर्व भी उस कार्य की सत्ता अपने कारण में विद्यमान में रहती है। अपनी उत्पत्ति से पूर्व कार्य अपने कारण में अव्यक्त रूप में विद्यमान रहता है। अर्थात उत्पत्ति से पूर्व भी कार्य की सत्ता होती है। इस सिद्धान्त को इसलिए सत्कार्य कहा जाता है क्योंकि इस सिद्धान्त में कार्य की उत्पत्ति से पूर्व भी कार्य की सत्ता को स्वीकार किया गया है। मान लीजिए कि 'अ' कोई कार्य है तथा 'ब' उसका कारण है, सत्कार्यवाद के अनुसार जब 'अ' की उत्पत्ति नहीं हुई है तब भी उसकी सत्ता 'ब' अर्थात उसके कारण में निहित थी।

सत्कार्यवाद की मान्यता के अनुसार 'कार्य' तथा 'कारण' में केवल रूप का अन्तर है। 'कार्य' को हम **'अभिव्यक्ति कारण'** (Cause Revealed) कहते सकते हैं, तथा 'कारण' को **'अव्यक्त कार्य'** (Effect-Concealed) कह सकते हैं। इस प्रकार किसी वस्तु के निर्माण से आशय है – कारण में निहित अव्यक्त कार्य को अभिव्यक्त होना। इसी आधार पर उत्पत्ति एवं विनाश की व्याख्या की गयी है। उत्पत्ति का आशय अव्यक्त कार्य का आविर्भाव (Manifestation) तथा विनाश का आशय व्यक्त कारण का तिरोभाव (Envelopment) है।

इसी आधार से प्रश्न सामने आता है कि कार्य अपने कारण का वास्तविक रूपान्तर है या नहीं। एक उत्तर के आधार पर कार्य अपने कारण का वास्तविक रूपान्तर है तो इस मत को मत **परिणामवाद** कहा गया। दूसरे मत के अनुसर कारण का कार्य में रूपान्तर नहीं बल्कि आभास मात्र होता है। इस मत को **विवर्तवाद** कहा गया। सांख्य दर्शन परिणामवाद का समर्थन है। इससे भिन्न शंकर के अद्वेतवाद में सत्कार्यवाद को माना गया है परन्तु विवर्तवाद के रूप में शंकर के अनुसार कार्य–कारण का विवर्त है परिणाम नहीं।

पाश्चात्य दर्शन में 'कार्य–कारण सिद्धान्त' का आधार

पाश्चात्य दर्शन में भी 'कार्य–कारण' की सिद्धान्त की व्याख्या अनेक दार्शनिकों ने अपने–अपने आधारों पर व्यक्त की है। इसमें इस सिद्धान्त को कारणता (Causality) या कारण का सिद्धान्त (Theory of Causation) कहा जाता है। इसमें अरस्तु, मिल व ह्यूम के विचार प्रमुख हैं जो निम्न प्रकार प्रदर्शित किये जा सकते हैं –

अरस्तू के विचार :

अरस्तु ने कारणता की विस्तृत तथा व्यवस्थित ढंग से व्याख्या प्रस्तुत की है। अरस्तु ने कारणों का विवेचन करने से पूर्व कारण के अर्थ का स्पष्टीकरण करके 'कारण व प्रयोजन में अन्तर प्रस्तुत किया है। इनके अनुसार किसी घटना के लिए 'कैसे' का उत्तर **'कारण'** पर आक्षित है किन्तु यदि इस घटना में 'क्यों की व्याख्या की जाए तो वह **प्रयोजना** पर आक्षित होगी। इसका एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है – किसी व्यक्ति का एक ही पुत्र है तथा वह बीमार होकर मर जाए तो हम कह सकते हैं कि बालक की अमुक मृत्यु का कारण सम्बन्धित रोग है। परन्तु यदि कोई यह पूछे कि बालक की मृत्यु क्यों हो गयी? तो यह प्रश्न मृत्यु के प्रयोजन के विषय में है। बालक की मृत्यु के प्रयोजन को स्पष्ट करना सम्भव नहीं है। प्रश्न उठता है कि अमुक व्यक्ति के इकलौते पुत्र की ही मृत्यु क्यों हो गयी? अनेक व्यक्तियों के अनेक पुत्र हैं, उनमें से किसी एक की मृत्यु क्यों नहीं हो गयी? इस प्रकार किसी घटना के 'कारण' एवं 'प्रयोजन' में अन्तर होता है। हम यहाँ पर कारण के सिद्धान्त पर विचार कर रहे हैं प्रयोजन पर नहीं।

अरस्तू ने अपने कारणता सिद्धान्त में स्पष्ट किया कि प्रत्येक घटना के घटित होने के लिए कोई एक कारण नहीं बल्कि चार कारण होते हैं –

1. **उत्पादन कारण** (Material Cause) : प्रत्येक वस्तु किसी न किसी पदार्थ या द्रव्य से बनी होती है। उस द्रव्य या पदार्थ को उस वस्तु का उत्पादन कारण कहा जाता है। उदाहरण – कुर्सी के लिए लकड़ी उत्पादन कारण है।
2. **निमित्त कारण** (Efficient Cause) : किसी घटना या वस्तु के लिए दूसरा आवश्यक कारण निमित्त कारण है। वस्तु के निर्माण में प्रक्रिया को गति प्रदान करने वाला कारण निमित्त कारण कहलाता है। निमित्त कारण ही उत्पादन कारण से वस्तु का निर्माण करता है। उदाहरण – लकड़ी व कुर्सी के सन्दर्भ में बढ़ई।

3. **स्वरूप कारण** (Formal Cause) : निमित्त कारण के सम्मुख एक विशिष्ट आकार होता है जिसके अनुरूप व कच्ची सामग्री या उत्पादन के कारण से अभीष्ट वस्तु का निर्माण करता है। उत्पादन कारण व निमित्त कारण के समान होने पर भी स्वरूप कारण ही असमानता से वस्तु मित्र हो जाती है। उदाहरण बढ़ई व लकड़ी होते हुए भी स्वरूप कारण की भिन्नता से कुर्सी के स्थान पर मेज बन जाना।
4. **लक्ष्य कारण** (Final Cause) : प्रत्येक वस्तु के निर्माण या घटना के घटित होने का कोई न कोई लक्ष्य या प्रयोजन भी होता है। अभीष्ट प्रयोजन से प्रेरित होने का कोई न कोई लक्ष्य भी होता है। अभीष्ट लक्ष्य से प्रेरित होकर ही वस्तु निर्माण की प्रक्रिया चला करती है। उदाहरण के लिए कुर्सी अन्तिम रूप में बनकर तैयार होती है वही उसके निर्माण का लक्ष्य कारण है।

उपरोक्त विवरण के आधार पर अरस्तू ने कारण सिद्धान्त की विवेचना की।

मिल का कारणवाद (Theory of Mill) :

मिल ने भी कारणता के सिद्धान्त की अपने दृष्टिकोण से व्याख्या प्रस्तुत की। मिल ने कार्य के नियत पूर्ववर्ती के रूप में स्वीकार किया है। मिल ने कारणता को स्पष्ट करते हुए कहा कि कारण कार्य का एक नियत पूर्ववर्ती (Invariable Entecedent) होता है। इस तथ्य को समझने के लिए मिल ने एकरूपता को आधार बनाया है। मिल ने स्पष्ट किया है कि एकरूपता दो प्रकार की होती है। प्रथम प्रकार की एकरूपता को **सह–अस्तित्व की एकरूपता** (Uniform of Co-existence) कहा गया है। इस प्रकार की एकरूपता किन्हीं दो साथ–साथ पाये जाने वाले तथ्यों में होती है, जैसे कि दूध तथा सफेद में सहअस्तित्व की एकरूपता है। दूसरे प्रकार की एकरूपता को **पूर्वापर एकरूपता** (Uniformity of Succession) कहा गया है। इस प्रकार की एकरूपता उन दो तथ्यों में मानी जाती है जो कालक्रम में एक के बाद एक रूप में आते हैं। जैसे बादल तथा वर्षा, घर्षण तथा गर्मी, धक्का तथा गति आदि में पूर्वापर एकरूपता है। मिल ने इस प्रकार की एकरूपता को **कारण–कार्य एकरूपता** (Causal Uniformity) भी कहा है। इसे ही उसने कारण–कार्य–नियम के रूप में भी प्रस्तुत किया है। मिल ने कार्य–कारण सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए कहा है कि, ''कारण–कार्य नियम, जो आगमनात्मक विज्ञान का मूल स्तम्भ है, कुछ नहीं बल्कि यह चिरपरिचित सत्य है कि प्रकृति की उन दो घटनों में जिनमें से एक पहले आती है और दूसरी बाद में एक नियत पूर्वापर सम्बन्ध पाया जाता है।'' इस तथ्य को एक अन्य प्रकार से स्पष्ट करते हुए मिल ने पुनः कहा है, ''कुछ तथ्यों के बाद कुछ तथ्य सदा ही आते हैं और हम विश्वास करते हैं कि भविष्य में भी उसके बाद आते रहेंगे। इसी प्रकार का नियत पूर्ववर्ती कारण कहलाता है तथा इस रूप से नियत अनुवर्ती कार्य कहलाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मिल ने नियत पूर्ववर्ती को कारण माना है तथा यह भी स्पष्ट किया है कि किसी घटना का कारण वह होता है जो सदैव उसके घटित होने से पहले प्रकट होता है या विद्यमान रहता है। मिल ने जहाँ कारण को कार्य का नियत पूर्ववर्ती स्वीकार किया है, वहीं उसने कारण के लिए दो अन्य तथ्यों को भी आवश्यक माना है। मिल ने स्पष्ट किया है कि कारण का नियत पूर्ववर्ती होने के साथ ही साथ **निरोपाधिक** (Unconditional) **पूर्ववर्ती** भी होता है। इसी प्रकार यदि कोई पूर्ववर्ती निरोपाधिक पूर्ववर्ती नहीं है तो उसे कारण नहीं माना जा सकता। किसी पूर्ववर्ती के निरोपाधिक होने का अर्थ यह है कि केवल वही नियत पूर्ववर्ती कारण होता है जो कि पूर्ववर्ती में अपना आप घटना को उत्पन्न करने वाली समस्त आवश्यक शर्तों से युक्त होता है। इस पूर्ववर्ती को सम्बन्धित घटना को उत्पन्न करने के लिए किसी अन्य कारण पर किसी भी रूप में निर्भर नहीं रहना पड़ता। इसके अतिरिक्त मिल ने एक अन्य बात का भी उल्लेख किया है। मिल के अनुसार, कोई कार्य केवल एक घटना का परिणाम नहीं होता बल्कि कार्य के पूर्ववर्ती कारण के रूप में प्रायः अनेकों घटनायें विद्यमान होती हैं। इस प्रकार प्रत्येक कार्य अनेकों घटनाओं का संयुक्त परिणाम होता है। मिल ने अनेक घटनाओं को 'शर्तें' कहा है। इस प्रकार 'शर्त' कार्य के सम्पूर्ण कारण का अंश होती है। कारण अनेक शर्तों का समूह होता है। मिल ने कारण को परिभाषित करते हुए कहा है, ''किसी घटना का कारण या तो एक पूर्ववर्ती है या अनेकों पूर्ववतियों का समूह है जिस पर या जिन पर घटना नियत तथा निरोपाधिक रूप में निर्भर करती है।'' मिल ने दो प्रकार की शर्तों का उल्लेख किया है जिन्हें उसने भावत्मक शर्त तथा निषेधात्मक शर्त कहा है। मिल ने कारण को भावात्मक तथा निषेधात्मक शर्त के योग के रूप में स्वीकार किया है। मिल ने स्पष्ट किया है कि कारण अपने आप में पर्याप्त शर्त है। कार्य तभी उत्पन्न होता है जब भावात्मक तथा निषेधात्मक समस्त शर्तें संयुक्त होती हैं। उनके अनुसार 'एक कारण एक कार्य' का सिद्धान्त

उचित नहीं है। कारण को निरुपाधिक होना आवश्यक है।

ह्यूम के अनुसार कारणता (Causality According to Hume)

ह्यूम ने स्पष्ट किया है कि कालक्रम में किसी घटना से पहले जो घटना विद्यमान होती है उसे कारण माना जाता है तथा बाद में आने वाली घटना को कार्य कहा जाता है। इस प्रकार कालक्रम में पहले घटित होने वाली घटना जिससे कोई अन्य घटना उत्पन्न हुई स्वीकार की जाती है, उस दूसरी घटना का कारण कही जाती है। भविष्य में भी जब कभी वह पहले उत्पन्न होने वाली घटना उत्पन्न होगी तो उसके परिणामस्वरूप दूसरी घटना भी अनिवार्य रूप से उत्पन्न होगी। इस प्रकार कारण सदैव पूर्ववर्ती होता है। कारण से कार्य की उत्पत्ति होती है। कारण के विद्यमान होने की स्थिति में कार्य अनिवार्य रूप से उत्पन्न होता है।

कार्य–कारण सिद्धान्त के पक्ष में तर्क

भारतीय व पाश्चात्य दर्शन ने अपने कार्य–कारण सिद्धान्तों के आधार पर अपने विचार प्रस्तुत किये। कार्य–कारण सिद्धान्तों के पक्ष में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं –

1. यदि यह मान लिया जाए कि किसी कार्य की सत्ता सम्बद्ध कारण में बिल्कुल भी विद्यमान नहीं होता तो उस स्थिति में कार्य की उत्पत्ति उस कारण में कदापि नहीं हो सकती। अर्थात जो स्वयं असत् है उससे सत् का निर्माण कदापि सम्भव नहीं है। उदाहरण बालू–रेत में से दूध निकालना पूर्णतया असम्भव है, क्योंकि बालू–रेत में दूध का पूर्ण अभाव है।
2. कार्य–कारण को पुष्ट करने के लिए दूसरा तर्क उत्पादन–नियम के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। इस तर्क में स्पष्ट किया जा सकता है कि यह एक स्थापित तथा व्यवहार सत्यापित सत्य है कि प्रत्येक विशेष कार्य के लिए विशेष कारण की ही आवश्यकता होती है। ऐसा नहीं होता कि किसी भी कारण से कोई कार्य उत्पन्न हो जाए। उदाहरण – दही रूपी कार्य के लिए दूध रूपी कारण की आश्यकता होती है। दही के लिए पानी को कारण के लिए नहीं चुना जा सकता।
3. यदि यह मान लिया जाए कि कार्य के अविर्भाव से पूर्व कार्य अपने सम्बद्धकरण में विद्यमान नहीं होता तो कार्य के अविर्भाव होने पर कहा जायेगा कि असत अर्थात जिसकी सत्ता नहीं है से सत् अर्थात् सतता का निर्माण हुआ। इस बात को कैसे स्वीकार किया जा सकता कि असत् से सत् की उत्पत्ति हो जाए।
4. अन्य तर्क के अनुसार यदि मान लिया जाए कि कार्य की उत्पत्ति से पूर्व वह कारण में विद्यमान नहीं होता तो कार्य–करण को आपस में सम्बन्धित करना सम्भव नहीं होगा। केवल सत् वस्तुओं में ही आपसी सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है।
5. कार्य–कारण सिद्धान्त के पक्ष में एक तर्क भारतीय सत्कार्यवाद को प्रमाणित करने के लिए कहा जाता है – **शक्तस्य शक्यकरणातु।** इस तर्क के अनुसार यह एक सत्यापित तथ्य है कि केवल शक्त कारण से ही सम्बद्ध कार्य की उत्पत्ति होती है। ऐसा नहीं होता कि किसी भी कारण से कोई भी कार्य उत्पन्न हो जाए।
6. सत्कार्यवाद के पक्षमें एक तर्क **कारणाभावत्** अर्थात् कारण एवं कार्य अभेद है (Effect is non-different from cause) के रूप में भी प्रस्तुत किया गया है। इस तर्क में यह स्थापित करने का प्रयास किया गया है कि कार्य तथा कारण में कोई भेद नहीं है।

भारतीय व पाश्चात्य कार्य–कारण सिद्धान्तों का मूल्यांकन :

भारतीय कार्य–कारण सिद्धान्त व पाश्चात्य कार्य–कारण सिद्धान्त का गहनता से अध्ययन इनकी समस्यता के अनेक बिन्दुओं को प्रदर्शित करता है। भारतीय सत्कार्यवाद के आधार की व्याख्या समस्त पाश्चात्य कार्य–कारण सिद्धान्तों का आधार स्वरूप दिखायी देता है। अरस्तू द्वारा कारण व प्रयोजना के स्वरूप की व्याख्या अपने सिद्धान्त को विस्तारता प्रदान करने वाले तथ्य से अधिक नहीं है। एक ओर अरस्तू प्रयोजना व कारण में अन्तर प्रदर्शित करते हैं तथा दूसरी ओर जब अपने चौथे कारण में लक्ष्य कारण को स्थान देते हैं तो बहुत सीमा तक प्रयोजना का स्वरूप आ जाता है। मिल के कार्य–कारण सिद्धान्त में जो कारण–कार्य–एकरूपता का दर्शन होता है, वह अनेक परिस्थितियों में असत्य भी हो सकती है। तेज धूप में बारिश की रिम–झिम बून्दों की अनुभूति हम सभी व्यक्ति कर सकते हैं। किसी कारण को शर्तों का समूह कहकर उस कार्य की सत्ता से सम्बन्धित करना उचित नहीं है। कार्य की उत्पत्ति केवल उसके कारण से सम्बन्धित होती है जो उस परिस्थिति की केवल आवश्यकता से तो कुछ सीमा तक सम्बन्धित हो सकता है किन्तु कारण की शर्तों से सम्बन्धित होना बहुत सीमा तक असम्भव है। ह्यूम के कार्य–कारण

सिद्धान्त में कालक्रम के आधार पर किसी कार्य–कारण का निर्धारण भी उचित नहीं है। यह सिद्धान्त तो किसी घटना या परिस्थिति के सन्दर्भ को भी पूर्ण नहीं कर सकता है।

उपरोक्त आक्षेपों से हम पाश्चात्य दर्शन के कार्य–कारण सिद्धान्त को सुशोभित कर सकते हैं। दूसरी ओर यदि सत्कार्यवाद जैसे कार्य–कारण सिद्धान्त का अध्ययन यदि विस्तारता से किया जाए तो ये आक्षेप कुछ सीमा तक इसमें भी है किन्तु भारतीय दर्शन की आध्यात्मिकता व धार्मिकता इस आधार को कुछ सीमा तक कम कर देती है। सत्कार्यवाद का निर्माण–स्वरूप मुख्य रूप से जगत् रचना व ईश्वरवादी आधार पर है। इसका निर्माण पाश्चात्य दर्शन स्वरूप भौतिकता के आधार पर नहीं हुआ है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सत्कार्यवाद पर भी ये आक्षेप आ जाते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. नीतिशास्त्र के प्रमुख सिद्धान्त, डॉ0 हृदय नारायण मिश्र, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. भारतीय दर्शन, जे0एस0 विनायक, संजीव प्रकाशन।
3. पाश्चात्य दर्शन, जे0एस0 विनायक, संजीव प्रकाशन।